वैदिक ज्योतिष शास्त्र में सूर्य : एक परिचय

डॉ. रामदेव साहू

भारतीय ज्योतिष शास्त्र वेदाङ्ग के रूप में सुप्रतिष्ठित रहा है। यद्यपि इसका जन्म यज्ञादि की क्रियमाणता के सन्दर्भ में कालज्ञान के निमित्त हुआ था किन्तु कालान्तर में जीव एवं जगत् दोनों के सन्दर्भ में इसे अन्वेषण का विषय बनाया गया जिसके परिणामस्वरूप यह अज्ञात भूत एवं भविष्य के विज्ञापक रूप में विकसित हुआ। उपनिषत्काल से पूर्व ही इसे पृथक् शास्त्र एवं विद्या के रूप में जाना जाने लगा था। इस शास्त्र का अवलम्बन प्राप्त कर ऋषि त्रिकालदर्शी हुए। उन्होंने अपनी शिष्य परम्परा के माध्यम से इसे पल्लवित किया। अनेक युगों की दीर्घावधि में किये गये चिन्तन के परिणामस्वरूप भारतीय ज्योतिष अनेक शाखा-प्रशाखाओं के रूप में अपने व्यापक स्वरूप को व्यक्त करने लगा। वर्तमान में पञ्चस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र सुप्रसिद्ध हैं तथा उनके अतिरिक्त अन्य रूपों में भी उसका विकसित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

ज्योतिष शब्द का मूल आधार है 'ज्योतिः' जिसका अर्थ है 'प्रकाश' चूँकि प्रकाश में ही सब कुछ दिखायी देता है तथा प्रकाश के अभाव में कुछ भी दिखायी नहीं देता। इसी से स्पष्ट होता है कि ज्योतिष वह ज्ञान है जो अदृष्ट भूत एवं भविष्य को भी स्पष्टतापूर्वक देख लेता है। 'ज्योति' अथवा प्रकाश का आदिम स्रोत भगवान् सूर्य हैं तथा वे ही इस शास्त्र के अधिष्ठाता रहे हैं। यद्यपि हमारे यहाँ सभी विद्याओं का प्रवर्तक ब्रह्मा को माना जाता रहा है तथापि वैदिक अवधारणाओं से यह भी स्पष्ट है कि ब्रह्मा एवं अन्यान्य सभी देवता सूर्य में ही प्रतिष्ठित हैं, अतः ब्रह्मा को प्रवर्तक मानने पर भी सूर्य का अधिष्ठातृत्व समाप्त नहीं हो जाता। इसी प्रकार सूर्य में जो प्रकाश है उसका मूल तत्त्व अग्नि है जो अत्यन्त व्यापक है। सभी लोकालोकों में प्राणि शरीरों में वनस्पति में तथा निर्जीव कहे जाने वाले पत्थर इत्यादि द्रव्यों में भी अग्नि की विद्यमानता है।

अग्नि की विद्यमानता जहाँ एक ओर द्रव्य के या सजीवों के अपने स्वरूप को व्यक्त करती है तथा उसका अनुभव कराती है वहीं दूसरी ओर सूर्य के प्रकाश में उसे अन्यों के लिए भी प्रदर्शित करने में सहायक होती है। सूर्य के आधारभूत तत्त्वों में प्रथम मूलतत्त्व होने से ही अग्नि को देवताओं में प्रथम स्थान दिया गया है। वैदिकों की तो स्पष्ट अवधारणा रही है– ''अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं बह्म सनातनम्[3]''। सूर्य में प्रतिष्ठित अग्नि ही जगदुत्पत्ति का भी कारण रही है क्योंकि सृष्टियज्ञ का प्रवर्तन सूर्य में ही होता है निरन्तर होता रहता है। पार्थिव परमाणुओं में विद्यमान शक्तिपुञ्जमयी रश्मियों को अपने रश्मियों से

ग्रहण कर सूर्य ही अपने में विद्यमान अग्नि को उन्हें हवि रूप में प्रदान करता है, परिणाम स्वरूप 'अग्निना अग्निः समिध्यते', अर्थात् वह अग्नि इन रश्मियों को और भी परिपक्व बना देता है। जिस प्रकार पकाया गया अन्न प्राणियों का पोषण करता है उसी प्रकार ये परिपक्व रश्मियाँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का परिपोषण करती हैं।

सूर्य के अन्तस् में जैसे अग्नि प्रतिष्ठित है वैसे ही वायु भी प्रतिष्ठित है जो अग्निमण्डलीय दबाव से उत्पन्न जलार्द्रता के कारण परमाणुओं को विच्छिन्न किये बिना प्रत्येक रश्मि को पृथक् पृथक् प्रवाहित करता है। अन्तरिक्ष में विद्यमान अव्यक्त अणुरूप वायु का ही यह कार्य है कि सूर्य की रश्मियाँ बिना परस्पर मिश्रित हुए ब्रह्माण्ड के प्रत्येक प्राणी एवं पदार्थ तक पहुँचती है। चूँकि हमारी पृथ्वी पर वायुमण्डलीय दबाव अन्तरिक्ष की अपेक्षा अधिक है अतः सूर्य से आने वाली अनेक रश्मियाँ छिन्न भिन्न हो जाती हैं तथा अनेक रश्मियाँ प्राणि शरीरों में अथवा जड़ द्रव्यों में अथवा वनस्पतियों में प्रवेश कर जाती हैं। इनके प्रभावस्वरूप पार्थिव जीवों द्रव्यों तथा वनस्पतियों में न केवल आकृतिजन्य अपितु अवस्थाजन्य भी सभी प्रकार के परिवर्तन सम्भव होते हैं। ज्योतिषशास्त्र मुख्य रूप से इन्हीं का अध्ययन करने की विधा है।

ज्योतिष शास्त्र सूर्य की भाँति अन्य आकाशीय पिण्डों से आने वाली रश्मियों के प्रभावों का भी अध्ययन करता है। मुख्यतया सूर्यातिरिक्त ग्रहों एवं नक्षत्रों से आने वाली रश्मियों के प्रभावों का, क्योंकि सभी पार्थिव सजीव-निर्जीव पदार्थों पर ये प्रभाव भी उतने ही सम्भव होते हैं जितने कि सूर्य रश्मियों के। यद्यपि सूर्य को ग्रह या ग्रहों का राजा भी कहा जाता है तथापि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार है। ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमाणुओं से निकलने वाली सभी प्रकार की रश्मियों को अपनी रश्मियों के बल से ग्रहण करने के कारण यह ग्रह माना गया है। अन्य ग्रह तो केवल सूर्य की रश्मियों को ही ग्रहण करके अपनी रश्मियाँ उत्सर्जित करते हैं। यही कारण है कि अन्य ग्रहों की अपेक्षा सूर्य अधिक शक्तिमान् है और सूर्य से गृहीत रश्मियों का उपयोग सृष्टि संचालन के निमित्त ही कर ऐसे शासनिक नियम से अन्य ग्रहों को शासित करने के कारण ही इसे ग्रहों का राजा कहा गया है।

राजानौ रविशीतगुः क्षितिसुतो
नेताकुमारो बुधः।
सूरिर्दानव पूजितश्च सचिवौ
प्रेष्यः सहस्रांशुजः।। (ज्यो.त. 9-2/52)

सूर्य एकमात्र स्थिर ग्रह है किन्तु उसका उदयबिन्दु प्रतिदिन परिवर्तित होता है जो पृथ्वी के परिक्रमण काल में होने वाले ध्रुवीय आकर्षण का परिणाम है और इसी से उत्तरायण में सूर्य का झुकाव उत्तर की ओर तथा दक्षिणायन में दक्षिण की ओर दिखायी देता है। उत्तरायण एवं दक्षिणायन दोनों में

उदय बिन्दु के झुकाव की एक निश्चित दूरी होती है जो पृथ्वी की स्थिति गति पर निर्भर करती है। वास्तव में देखा जाये यह दूरी पृथ्वी के परिभ्रमण के अन्तिम बिन्दु को बतलाती है। सूर्य के उदय बिन्दु से लेकर इस अन्तिम बिन्दु के मध्य का जो भाग है वही अन्तरिक्ष है। यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जब हम उत्तरायण एवं दक्षिणायन के आधार पर पृथ्वी के परिभ्रमण के अन्तिम बिन्दु का निर्धारण करते हैं तो पृथ्वी के परिभ्रमण का आरम्भ बिन्दु क्या है? इस विषय में यजुर्वेद का वचन है–

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः
पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः।
इयं वेदि परोऽन्तः पृथिव्या
अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।।

यहाँ 'नाभि' शब्द उत्तरायण एवं दक्षिणायन के अन्तिम बिन्दुओं की दूरी के मध्य भाग का निर्देश करता है तथा यह मध्य बिन्दु पूर्व में होता है क्योंकि 'यज्ञ' शब्द सूर्य में निरन्तर होने वाली नाभिकीय परमाणु विखण्डन की प्रक्रिया के लिए आया है तथा 'वेदि' शब्द पूर्वी क्षितिज के लिए प्रयुक्त हुआ है। जहाँ सूर्य उदित होता हुआ दिखायी देता है यही मध्य बिन्दु है तथा पृथ्वी के परिभ्रमण का आरम्भ बिन्दु है। इसे ही परिभ्रमण का भी आरम्भ बिन्दु मानना चाहिए। तथा इसी आरम्भ बिन्दु से स्थिति एवं गति का निर्धारण करते हुए सूर्य के प्रभावों का अध्ययन करना चाहिए।

वैदिक मत में सूर्य का जन्म नक्षत्र कृत्तिका है। सूर्य के प्रारम्भिक उदय बिन्दु ही दिशा कृतिका की स्थिति को बताती है तथा कृतिका को भी सूर्य की भाँति स्थिर माना गया है। इस विषय में शतपथ ब्राह्मण का अधोलिखित वचन ध्यातव्य है–

''एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते। सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते।''

यहाँ कृतिकाओं के अतिरिक्त अन्य नक्षत्रों को गतिशील माना है। कृतिकाओं का स्वरूप आकाश में ऊपर की ओर उठती हुई अग्निज्वालाओं के तुल्य माना है। अथर्ववेद भी यहीं से वैश्वानरपथ का प्रारम्भ बतलाता है–

वैश्वानरस्याप्रतिमोपरि द्यौ–
र्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः।
ततः षष्ठद्धामुतो यन्ति स्तोमां
उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः।।

यह वैश्वानरपथ ही राशिचक्र या नक्षत्र मण्डल है। राशिचक्र या नक्षत्रमण्डल में विद्यमान तारे भी सूर्य रश्मियों को ग्रहण कर अपनी रश्मियाँ उत्सर्जित करते हैं तथा इनका प्रभाव भी ग्रहों की गति के प्रभाव से प्रभावित होता है। जिस तरह ग्रहों की स्थिति एवं गति सूर्य रश्मियों से प्रभावित होती है

उसी प्रकार नक्षत्रों की भी स्थिति एवं गति सूर्य रश्मियों से प्रभावित होती है। यही कारण है कि ग्रहों एवं नक्षत्रों की उत्सर्जित रश्मियाँ सूर्य रश्मियों की भाँति सभी पार्थिव द्रव्यों सजीवों तथा निर्जीवों को प्रभावित करती है।

संदर्भः–

1. आचार्य कश्यप ने ज्योतिष शास्त्र की आचार्य परम्परा का प्रारम्भ सूर्य से ही माना है। उस सन्दर्भ में कश्यम संहिता का वचन है–

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिरा।।
लोमशः पोलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिः शास्त्र प्रवर्तकाः।। (क.सं.–1/3,4)

2. (क) महर्षि पराशर ने ज्योतिषशास्त्र की आचार्य परम्परा का प्रारम्भ ब्रह्मा से माना है। जैसा कि पराशरसंहिता के निम्नांकित उद्धरण से स्पष्ट होता है–

विश्वसृङ्नारदो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
लोमशो यवनः सूर्यश्च्यवनः कश्यपो भृगुः।
पुलस्त्यो मनुराचार्यः पौलिशः शौनकोऽङ्गिरा।
गर्गो मरीचिरित्येति ज्ञेयः ज्योतिः प्रवर्तकाः।। (परा.सं.–1/6,7)

(ख) सिद्धान्त तत्त्वविवेक में कमलाकर भट्ट ने ब्रह्मा एवं सूर्य दोनों को पृथक् पृथक् प्रवर्तक स्वीकार किया है।

पूर्व विभागाध्यक्ष, साहित्य विभाग,
राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय,
कालाडेरा, जयपुर